

अष्टाध्यायी के वृत्तिकार इतिहास और विशेषताएँ

डॉ. अभिषेक अग्निहोत्री

असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग
महाराज बलवन्त सिंह पी. जी. कॉलेज
गंगापुर, वाराणसी

सूत्रग्रन्थ संक्षिप्त होने के कारण अपने में विस्तृत अर्थों को गुम्फित किए रहते हैं, इस सभी का अभिप्राय हृदयङ्गम करने के लिए व्याख्यानग्रन्थों की आवश्यकता होती है। इनमें से लघु व्याख्यानग्रन्थों का व्यवहार “वृत्ति” शब्द से होता है। वृत्ति में “पदच्छेद, पदार्थ, समासादि विग्रह, अनुवृत्ति, वाक्य योजना उदाहरण, प्रत्युदाहरण पूर्वपक्ष और समाधानदि “अंश प्रायः रहा करते हैं? परन्तु इन सभी अंशों का व्याख्यान संक्षेप में किया जाता है जबकि भाष्यग्रन्थों में स्वाभिप्राय, मूल ग्रन्थकार के अभिप्राय और अन्य विद्वानों द्वारा व्यक्त किए गए अभिप्राय का भी स्पष्टीकरण होता है, इसलिए भाष्यग्रन्थ विस्तृत होते हैं। इस प्रकार बृहद्व्याख्यान के रूप में भाष्यग्रन्थों की तथा लघु व्याख्यान के रूप में वृत्तिग्रन्थों की मान्यता है।”

महामुनि पाणिनि की अष्टाध्यायी पर भी अनेक व्याख्यानग्रन्थ लिखे गए थे। कुछ संकेतो के आधार पर ऐसा भी माना जा सकता है कि पाणिनि ने भी अपने सूत्रों पर कोई वृत्ति लिखी है। इसके अतिरिक्त “कुणि” आदि वृत्तियों के भी उल्लेख प्राप्त होते हैं। कुछ वृत्तियाँ तो ग्रन्थक्रम के अनुसार लिखी गई हैं, जबकि कुछ में प्रक्रिया या प्रकरणक्रम का अनुसरण किया गया है। यहाँ काशिका आदि कुछ प्रमुख वृत्तियों का ही विस्तृत परिचय दिया जाएगा अनुपलब्ध तथा सामान्य वृत्तियों का परिचय सांकेतिक रूप में ही रहेगा। सुविधा की दृष्टि से ग्रन्थक्रमवाली वृत्तियों को एक खण्ड में तथा प्रक्रियाक्रमवाली वृत्तियों को दूसरे खण्ड में सम्मिलित किया गया है।

ग्रन्थक्रमवाली प्रमुख वृत्तियाँ—

1. काशिकावृत्ति (जयादित्य और वामन)
2. भागवृत्ति (विमलमति भर्तृहरि)
3. भाषा वृत्ति (पुरुषोत्तमदेव)
4. दुर्घटवृत्ति (शरणदेव)
5. शब्दकौस्तुभ (भट्टोजिदीक्षित)
6. व्याकरणसिद्धान्त सुधानिधि (विश्वेश्वरसूरि)
7. व्याकरणदीपिका (ओरम्भट्ट)
8. अष्टाध्यायीभाष्य (स्वामी दयानन्द)

ग्रन्थक्रमवाली सामान्य, ज्ञात तथा अनुपलब्ध वृत्तियाँ—

- | | |
|---|-------------------------------------|
| (1) श्वोभूतिकृत | (7) शब्दावतार (महाराज दुर्विनीत) |
| (2) व्याङ्गिकृत | (8) अष्टाध्यायीवृत्ति (चुल्लिभट्ट) |
| (3) कुणि—विरचित | (9) निर्लूरवृत्ति |
| (4) माधुरी वृत्ति | (10) दुर्घटवृत्ति (मैत्रेयरक्षित) |
| (5) वररुचिरचित | (11) पाणिनीय मिताक्षरा (अन्नम्भट्ट) |
| (6) शब्दावतारन्यास (पूज्यपाद देवन्दी) | (12) सूत्र प्रकाश (अप्पय्यदीक्षित) |
| (13) पार्णिनीयदीपिका (नीलकण्ठ बाजपेयी) | |
| (14) शाब्दिकचिन्तामणि (गोपालकृष्ण शास्त्री) | |
| (15) चूर्णिवृत्ति | |
| (16) भर्त्रीश्वरवृत्ति | |

- (17) भट्टजयन्तवृत्ति
- (18) श्रुतपालवृत्ति
- (19) इन्दुमती वृत्ति (इन्दुमित्र)
- (20) केशववृत्ति
- (21) गोकुलचन्द्र वृत्ति आदि।

इनके अतिरिक्त भी अज्ञातकालिक अथवा अज्ञातकर्तक कुछ वृत्तिग्रन्थों के नाम मिलते हैं, जिनका परिचय प्रायः उपलब्ध नहीं होता।

काशिकावृत्तिकार आचार्य जयादित्य (छठी-सातवीं शताब्दी)–

1. **देशकाल**– इत्सिङ् ने अपने यात्रा वर्णन में केवल जयादित्य का ही नामोल्लेख किया है, वामन का नहीं। उनके अनुसार जयादित्य की मृत्यु ई० सन् 661 वि०सं० 718 के लगभग हुई थी (द्र०–इत्सिङ् की भारत यात्रा, पृ० 262) इसी आधार पर मैक्समूलर ने काशिकावृत्ति का समय ई० सप्तम शताब्दी के मध्य का पूर्वभाग स्वीकार किया है।
2. **मैक्समूलर**– ने नामक अपने शोधपत्र में डॉ० बोथलिङ्क का मत दिखलाया है कि कश्मीर के राज जयापीड का ही नाम जयादित्य था और वामन उसका सभापण्डित था। राजतरङ्गिणी के अनुसार जयापीड का काल 8वीं शताब्दी है। अतः वामन का भी यही काल है।
3. **“शिशुकन्दयमसभ”** (4.3.88) सूत्र पर काशिका में “वाक्यपदीय” का एक उदाहरण दिया गया है, जिसके रचयिता भर्तृहरि हैं। अतः काशिकाकार इनके उत्तरवर्ती सिद्ध होते हैं। प्र० बेल्वेत्कर (पृ० 33) में, प्र० के०वी० अभ्यंकर ने ‘डिक्शनरी ऑफ़ संस्कृत ग्रामर’
4. काशिकाकार ने **“प्रकाशनस्थेयाख्ययोश्च”** (पा० 1.3.23) की व्याख्या में भारवि का ‘संशय्य कर्णादिषु तिष्ठते यः’ (किराता 3.14) का पद्य उद्धृत किया है। डॉ० कीथ ने (109) भारवि का समय (वि०सं० 557–607) 500–550 ई० के मध्य स्थापित किया है। युधिष्ठिर मीमांसक ने (व्या०शा० का इति०, भाग 1, पृ० 425) महाराज दुर्विनीत के काम के आधार पर भारवि का काल (वि०सं० 0596–616) 539–569 ई० माना है।

काशिकावृत्ति के उपजीव्य ग्रन्थ–

1. काशिका से पूर्ववर्ती अनेक वृत्तिग्रन्थ
2. पतञ्जलिकृत महाभाष्य
3. धातुपारायण (सम्भवतः पूर्णचन्द्रकृत)
4. नामपारायण (गणपाठ का व्याख्यान) वृत्तौ भाष्ये तथा धातुनामपरायणादिषु। विप्रकीर्णस्य तन्त्रस्य क्रियते सारसंग्रहः 11 (काशिका के प्रारंभ में)
5. कातन्त्रव्याकरण
6. चान्द्रव्याकरण आदि।

प्रक्रियाग्रन्थ तथा व्याख्या सम्पत्ति

अष्टाध्यायी की प्रक्रियाग्रन्थानुसारी वृत्तियाँ–

1. रूपावतार (आचार्य धर्मकीर्ति)
2. प्रक्रियारत्न
3. रूपमाला (विमल सरस्वती)
4. प्रक्रिया कौमुदी (भट्टोजिदीक्षित),
5. वैयाकरणसिद्धान्त कौमुदी (भट्टोजिदीक्षित)
6. प्रक्रियासर्वस्व (नारायणभट्ट)
7. मध्यसिद्धान्त कौमुदी–लघुसिद्धान्त कौमुदी–सारसिद्धान्त कौमुदी (आचार्य वरदराज) तथा
8. पण्डित सोमनाथ सिन्देल कृत (प्रतिसंस्कृत सिद्धान्त कौमुदी)।

रूपावतार के कुछ वचन

तुक् स्वरः प्रकृतिश्चैव व्यञ्जन च ततः परम्।

ततो विसर्जनीयश्च स्वादिः षट्सन्धिरुच्यते ।।
वृक्षस्तिष्ठति कानने कुसुमिता वृक्षं लता संश्रिता ।
वृक्षेणाभिहतो गजो निपतितो वृक्षात् देयं जलम् ।।
वृक्षादानय मञ्जरीमभिनवां वृक्षस्य शाखोन्नता ।
वृक्षे नीडमिदं कृतं शकुनिना हे वृक्ष, किं कम्पसे ।।
रुद्रो विश्वेश्वरो देवो युवयोः कुलदैवतम् ।
स एव नाथो भगवान् आवयोः शत्रुकर्दनः ।।
परमप्रकृतिर्गर्गो गार्गिस्तु तदनन्तरः ।
गोत्रे गार्ग्यस्तृतीयः स्यात् तुर्यो गार्ग्यायणो युवा ।।

प्रक्रियाकौमुदीकार रामचन्द्र

पूर्ववर्ती प्रक्रियाग्रन्थों की अपेक्षा रामचन्द्र ने प्रक्रियाकौमुदी में कुछ विशेष परिष्कार किया है। यद्यपि इसमें भी वैदिक स्वर-प्रकरण के सूत्र व्याख्यात नहीं हैं, फिर भी लौकिक भाग के प्रायः सभी सूत्रों की इसमें व्याख्या की गई है। रूपावतार-रूपमाला में इसकी अपेक्षा कम सूत्र व्याख्यात हुए हैं। यतः पाणिनीय व्याकरण शास्त्र में प्रवेश के इच्छुक विद्यार्थियों के लिए इस ग्रन्थ की रचना हुई है। अतः इसमें सरल पद्धति और सरल शब्दों का आश्रय लिया गया है। ऐसी मान्यता है कि भट्टोजिदीक्षित ने इसी ग्रन्थ सुप्रसिद्ध ग्रन्थ “सिद्धान्तकौमुदी” की रचना की थी। यह तथ्य इन दोनों ग्रन्थों की तुलना में स्पष्ट प्रतीत होता है। लोक व्यवहार में प्रचलित एक सौ से भी अधिक उपाणिनीय शब्दों को सिद्ध करने का इसमें प्रयास किया गया है। पाणिनि से भिन्न अनेक आचार्यों के मत यथास्थान दिखाए गए हैं।

आचार्य बलदेव उपाध्याय के अनुसार मध्ययुग में काशी की प्रतिष्ठा में पाणिनीय व्याकरण के उपब्रंहण का भी विशेष योगदान रहा। 14वीं शताब्दी से लेकर 18वीं शताब्दी तक के समय को व्याकरण के इतिहास में स्वर्णयुग कहा जा सकता है और इस स्वर्ण युग को लाने का श्रेय काशी के वैयाकरणों को प्राप्त है। इसी युग के प्रख्यात वैयाकरण रामचन्द्राचार्य ने “प्रक्रियाकौमुदी” नामक अपनी विशद रचना के द्वारा व्याकरण के इतिहास में एक नए युग का सूत्रपात किया।

रामचन्द्र ने अपने प्रक्रियाकौमुदी ग्रन्थ में रचनाकाल का कोई उल्लेख नहीं किया है। रामचन्द्र के शिष्य शेष श्रीकृष्ण द्वारा रचित प्रक्रियाकौमुदी प्रसाद टीका का हस्तलेख सं० 1536 का उपलब्ध होता है। इसका तिब्बती भाषा में अनुवाद भोट पण्डित वगीश्वर लक्ष्मी निराभोग (17वीं शताब्दी) ने किया था, जो 452 पत्रों में आज भी प्राप्त है।

प्रक्रियाकौमुदी पर लगभग 10 टीकाएं लिखी गई थी, परन्तु इनमें दो विशेष प्रसिद्ध हैं और मुद्रित रूप में उपलब्ध होती हैं। (1) शेषकृत्त रचित प्रक्रियाकौमुदी प्रकाश तथा (2) विट्ठलरचित प्रक्रियाकौमुदी प्रसाद।

प्रक्रियाकौमुदी प्रकाश

इसके रचयिता शेषवंशावतंस शेष श्रीकृष्ण हैं। ये अकबर के समकालिक थे। अकबर के प्रसिद्ध मन्त्री बीरबल के पुत्र कल्याण को व्याकरण सिखाने के लिए उन्हीं के आदेश से यह व्याख्या लिखी गई थी। शेष कृष्ण रामचन्द्र के ज्येष्ठ भ्राता शेष नृसिंह के पुत्र थे। और 16वीं शताब्दी के वैयाकरणों में प्रधान थे। शेष कृष्ण ने ग्रन्थ के प्रारम्भ में अपने आश्रयदाता राजा बीरबल के वंशवृक्ष का ऐतिहासिक विवरण प्रस्तुत किया है। यह व्याख्या बड़ी ही विशद तथा विस्तृत है। इसमें प्रदर्शित कुछ मतों का भट्टोजिदीक्षित ने प्रौढमनोरमा में खण्डन किया है। पाण्डितराज जगन्नाथ इसे सहन नहीं कर सकें उन्होंने मनोरमाकुचमर्दन नामक अपने व्याकरण सम्बन्धी ग्रन्थ को लिखकर दीक्षित ने प्रत्याख्यानों का बुरी तरह से खण्डन किया है और शेष श्रीकृष्ण के मूल आशय बड़ी ही प्रौढता के साथ प्रतिपादित कर उनके मत का मण्डन किया है।

प्रक्रियाकौमुदी प्रसाद

रामचन्द्र के पौत्र नृसिंह के पुत्र विट्ठल ने यह टीका लिखी है। विट्ठल ने शेष कृष्ण के पुत्र रामेश्वर अपरनाम वीरेश्वर से व्याकरण शास्त्र का अध्ययन किया था। टीका अत्यन्त सरल है, इसमें प्रौढता प्रतीत नहीं होती। लेख से ऐसा कहा जा सकता है कि उस समय एक प्रक्रियाकौमुदी में पर्याप्त प्रक्षेप हो चुके थे। इसमें अनेक ग्रन्थों तथा ग्रन्थकारों को उद्धृत किया गया है। विट्ठलपुत्र के हाथ का लिखा हुआ हर हस्तलेख पुना के डेक्कन कालेज-पुस्तकालय में है, इसका लेखनकाल सं० 1583 है। सं० 1560 का एक हस्तलेख बड़ौदा के राजकीय पुस्तकालय में है, इससे भी पुराना सं० 1536 का हस्तलेख लन्दन के इण्डिया ऑफिस पुस्तकालय में सुरक्षित है।

प्रक्रियासर्वस्व का संक्षिप्त परिचय

नारायण भट्ट ने प्रक्रियासर्वस्व नामक एक विशाल वृत्तिग्रन्थ की रचना की है, इसमें पाणिनि के समस्त सूत्रों की प्रक्रियाक्रम से व्याख्या की गई है। समस्त ग्रन्थ बीस खण्डों में विभक्त है, परन्तु अधावधि तद्धित-उणादि आदि 5-6 खण्ड ही मुद्रित हुए हैं। 1-4 खण्डों का प्रकाशन त्रिवेन्द्रम सीरीज (सं० 106) के अन्तर्गत 1931 ई० में तथा तद्धित खण्ड एवं उणादि प्रकरण का मद्रास विश्वविद्यालय संस्कृत सीरीज के अन्तर्गत वि०सं० 1999-1941 ई० सं० 15 तथा वि०सं० 1990-1933 ई० (सं० 7) में चुका है। जो सामग्री प्रकाशित है। जो उसे देखकर ऐसा कहा जा सकता है कि यह ग्रन्थ भट्टोजिदीक्षित की वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी नामक वृत्ति से भी अधिक विस्तृत है।

उत्कर्षकाल सिद्धान्त कौमुदी आदि चार ग्रन्थ

प्रक्रियानुसारी ग्रन्थों में भट्टोजीदीक्षित द्वारा विरचित “सिद्धान्तकौमुदी” की लोकप्रियता उसके सर्वाङ्गपूर्ण होने के कारण आज तक निरन्तर बनी हुई है। समग्र पाणिनीयाष्टक को समाकलित कर दीक्षित ने व्याकरण के इतिहास में अपनी अमिट छाप लगा दी। यह ग्रन्थ प्रक्रिया शैली की पूर्णता को प्राप्त करने वाला अध्यवसाय है। भाषा की दृष्टि से “सुप्तिङन्तचयोवाक्यम्” को अभिलक्षित कर अपने इस ग्रन्थ को दो भागों में विभक्त किया है। तदनुसार पूर्वार्द्ध में सुबन्त शब्दों की सिद्धि में उपयोगी प्रकरणों का उसके अन्तर्गत विभाजन किया गया है जिसमें संज्ञा, परिभाषा, सन्धि, सुबन्त अव्यय, स्त्री प्रत्यय, कारक, समास तथातद्धित प्रकरणों को निबद्ध किया है। उत्तरार्द्ध में तिङन्त शब्दों तथा तदुपयोगी तिङन्त (दशगण) व्यन्तादि प्रक्रियाएं तथा कृदन्त प्रकरण समकलित है। इस प्रकार “सिद्धान्तकौमुदी” में अष्टाध्यायी के 3978 सूत्र व्याख्यात हैं। जिनमें से लौकिक प्रक्रिया में व्याख्यात सूत्रों की संख्या 3389 है। वैदिक प्रक्रिया में 263 तथा स्वर प्रक्रिया में 329 सूत्रों की व्याख्या की गयी है। इस तरह इनका योग 3386, 363, 329 = 3978 होता है। 14 माहेश्वर सूत्रों को सम्मिलित कर यह संख्या 3992 हो जाती है किन्तु “स्वर सिद्धान्त चन्द्रिका” में सूत्रों की संख्या 3995 बतलाई गई है। निम्नलिखित प्रकरण-सारिणी से सिद्धान्त कौमुदी का प्रक्रिया विवरण स्पष्ट हो जायेगा:-

1. संज्ञा-प्रकरण (सूत्रपाठ संख्या 33, वार्तिक पाठ संज्ञा सं० 3)
2. परिभाषा-प्रकरण (सूत्र सं० 13, वा० 38, परि० 3)
3. सन्धि-प्रकरण (सूत्र सं० 131, 13 वां 38, परि० 3)
 - (क) अच् सन्धि (सूत्र सं० 13, वा० 38, परि० 3)
 - (ख) हल्-सन्धि (सूत्र सं० 39, वा० 8, परि० 1)
 - विसर्ग-सन्धि (सूत्र सं० 12, वा० 5)
 - स्वादि सन्धि सूत्र सं० 16, वा० 2
4. सुबन्त-प्रकरण (सूत्र सं० 269, वां 26, परि० 11)
 - (क) अजन्त पुलिङ्ग (सूत्र सं० 109, वा० 5, परि० 6)
 - (ख) अजन्त-नपुंसकलिङ्ग (सूत्र सं० 15, वा० 5)
 - (ग) अजन्त पुलिङ्ग (सूत्र सं० 22, वा० 1, परि० 1)
 - (घ) अजन्त स्त्रीलिङ्ग (सूत्र सं० 116, वा० 7, परि० 4)

- (ङ) हलन्त पुलिङ्ग (सूत्र सं० 3)
(च) हलन्त नपुंसकलिङ्ग (सूत्र सं० 4, वा० 4)

अव्यय (सूत्र 6)

- स्त्रीप्रत्यय (सूत्र सं० 79, वा० 54, परि० 1)
कारक (सूत्र सं० 115, वा० 36, परि० 1)
समास (सूत्र सं० 425, वा० 128, परि० 5)
(क) अव्ययीभाव (सूत्र 36, वा० 2)
(ख) तत्पुरुष (सूत्र 145, वा० 36, परि० 2)
(ग) बहुव्रीहि (सूत्र सं० 72, वा० 25, परि० 1)
(घ) द्वन्द्व (सूत्र सं० 30, वा० 11)
एकशेष (सूत्र 9, वा० 5)
सर्वसमासान्त (सूत्र 18, वा० 7)
अलुक् (सूत्र 27, वा० 13)
समासा श्रयविधि (सूत्र 87, वा० 26, परि० 2)
9. तद्धित (सूत्र 1079, वा० 222)
अपत्याधिकार (सूत्र 130, वा० 23)
रक्ताद्यर्थ (सूत्र 77, वा० 31)
चातुरर्थिक (सूत्र 33, वा० 4)
शैषिक (सूत्र 202, वा० 33)
प्राग्दीव्यतीत (सूत्र 34, वा० 5)
ठगधिकार (सूत्र 78, वा० 11)
प्रग्वितीय (सूत्र 35)
छयतोरधिकार (सूत्र 19, वा० 9)
आर्हीय (सूत्र 45, वा० 6)
ठजधिकार (सूत्र 36, वा० 12)
ठजधिकार (सूत्र 17, वा० 3)
भावकर्मार्थ (सूत्र 23, वा० 4)
पाञ्चमिक (सूत्र 101, वा० 27)
प्राग्वितीय (सूत्र 77, वा० 16)
स्वार्थक (सूत्र 88, वा० 14)
द्विरुक्त (सूत्र 12, वा० 6)
10. तिङन्त प्रक्रिया (सूत्र 678, वा० 108, परि० 10, धातुपाठ 1967)
11. भ्वादि (सूत्र 272, वा० 23, परि० 4, धातु 1035)
अदादि (सूत्र 66, वा० 6, परि० 3, धातु 72)
जुहीत्यादि (सूत्र 16, धातु 24)
दिवादि (सूत्र 18, धातु 140)
स्वादि (सूत्र 11, वा० 1, धातु 35)
तुदादि (सूत्र 9, वा० 4, धातु 156)
रुधादि (सूत्र 4, धातु 25)
तनादि (सूत्र 7, धातु 9)
क्रयादि (सूत्र 9, वा० 1, धातु 61)
चुरादि (सूत्र 12, वा० 1, धातु 410)
ठाजन्त प्रक्रिया (सूत्र 33, वा० 6, धातु 1)

- सन्नन्त (सूत्र 22, वा0 3, धातु 1)
यङन्त (सूत्र 21, वा0 22)
यङ्लुगन्त (सूत्र 7, वा0 1)
नामधातु (सूत्र 21, वा0 22)
कण्ड्वादि (सूत्र 1)
प्रत्ययमाला (वा0 2)
आत्मेनपद (सूत्र 66, वा0 22)
परस्मैपद (सूत्र 11, वा0 2)
भावकर्म (सूत्र 10, वा0 1)
कर्मकर्तृ (सूत्र 7, वा0 7)
लकारार्थ (सूत्र 56, वा0 4)
12. कृदन्त (सूत्र 558, वा0 118)
कृत्य प्रक्रिया (सूत्र 66, वा0 14)
पूर्वक्रदन्त (सूत्र 273, वा0 67)
उत्तरक्रदन्त (सूत्र 219, वा0 36)
13. वैदिकी प्रक्रिया (सूत्र 261, वा0 41)
प्रथम अध्याय (सूत्र 7, वा0 3)
द्वितीय अध्याय (सूत्र 9, वा0 1)
तृतीय अध्याय (सूत्र 42, वा0 7)
चतुर्थ अध्याय (सूत्र 45, वा0 3)
पंचम अध्याय (सूत्र 18, वा0 5)
षष्ठ अध्याय (सूत्र 47, वा0 8)
सप्तम अध्याय (सूत्र 42, वा0 8)
अष्टम अध्याय (सूत्र 51, वा0 6)
14. स्वर प्रक्रिया (सूत्र 328, वा0 129, फिट् सूत्र 85)
साधारण स्वर (सूत्र 20, वा0 10)
धातु स्वर (सूत्र 9)
प्रातिपदिक स्वर (सूत्र 28)
फिट् स्वर (सूत्र 85)
प्रत्यय स्वर (सूत्र 26, वा0 4)
समास स्वर (सूत्र 200, वा0 9)
तिङन्त स्वर (सूत्र 45, वा0 6)

इसके अतिरिक्त भट्टोजीदीक्षित ने सिद्धान्त कौमुदी में चार परिशिष्ट और जोड़े हैं—
(क) पाणिनीय शिक्षा (ख) गणपाठ (ग) धातुपाठ (घ) लिङ्गानुशासन।

प्रौढमनोरमा—

समग्र अष्टाध्यायी को अभिलक्षित कर भट्टोजीदीक्षित ने लौकिक एवं वैदिक शब्दों की प्रक्रिया के 'कार्यकाल' पक्ष का अनुगमन कर सिद्धान्त कौमुदी की रचना की। फिर भी उन्हे उसमें कमी दिखलाई पड़ी जिस कारण स्वयं स्वोपज्ञवृत्ति के रूप में "प्रौढमनोरमा" की निर्मित उन्हे आवश्यक प्रतीत हुई। उन्होंने स्वतंत्र ग्रन्थ के रूप में रचना न करते हुए स्वतंत्र ग्रन्थ के रूप में रचना न करते हुए कौमुदी के आवश्यक विस्तार योग्य स्थलों के प्रतीक मात्र के संकेत से उसका व्याख्यान किया। इस विधा में यद्यपि सौविध्य नहीं है, तथापि यह परंपरा का अनुसरण तथा निज विजय प्रदर्शन मात्र है।

कौमुदी के समान प्रौढमनोरमा को विभाजन भी पूर्वार्ध तथा उत्तरार्द्ध के रूप में किया गया। पूर्वार्ध में संज्ञा प्रकार के प्रारम्भ कर द्विरुक्त प्रक्रियापर्यन्त तथा उत्तरार्द्ध में भ्वादि से

प्ररम्भ कर कृदन्त पर्यन्त भाग समाविष्ट किया है। तदनन्तर वैदिक भाग में वैदिकी एवं स्वर प्रक्रिया समाकलित की गई है। इस विभाजन के फलस्वरूप वाक्यगत उद्देश्य एवं विधेयगत शाब्दिक प्रक्रिया सम्पन्न की गयी है। ग्रंथारम्भ में संज्ञा एवं परिभाषा प्रकरण समस्त ग्रन्थोपयोगी है, क्योंकि संज्ञा ही सकल ग्रंथगत विषयों का आधार है। वही सर्वत्र संकेत ग्राहक है। प्रसंगवश इत्संज्ञा का आरम्भ करते हुए कौमुदीकार ने 'उपदेश' शब्द के व्याख्यान में उसका अर्थ आद्योच्चारण स्वीकार किया है। तथा उसे भावघञन्त मानकर उसका व्याख्यान किया है। किन्तु हरिदीक्षित, नागेश, भैरवमिश्र आदि परवर्ती विद्वान् महाभाष्योक्त कारणघञन्तव्युत्पत्ति को स्वीकार करते हैं। 'भाव प्रकाश' कार वैद्यनाथ पायगुण्डे भी महाभाष्य सरणि का ही समर्थन करते हैं। संज्ञा प्रकरण में संज्ञा सम्बन्धी तैत्तिरीय विषयों का विवेचन किया गया है। तदनुसार क्रमशः 'परिभाषा' के सम्बन्ध में विचार किया गया है। "अनियमं नियमकारिणी परिभाषा" इस प्रकार परिभाषा को परिभाषित किया गया है, जो 'अष्टाध्यायी' में यत्र-तत्र समाकीर्ण हैं।

समास प्रकरण—

सुबन्त पदों की सिद्धि एवं सुप्रत्ययों के अर्थ विशेष का निर्वचन करते हुए भट्टोजिदीक्षित द्वारा एक से अधिक पदों के समूहात्मक स्वरूप को अभिलक्षित कर कारक प्रकरण के अनन्तर समास प्रकरण का उपन्यास यथोचित ही है। चतुर्विध प्रमुख समासों में प्रथम अव्ययीभाव समास की व्याख्या के पूर्ण समस्यमान पदों में सामर्थ्य होना अपेक्षित कहा है। अतः समर्थपद की समधीश्रुत में लक्षणा मान्य है। इसी प्रकार अव्ययीभाव की व्याख्या में आवश्यक स्थलों पर विचार किया है। तत्पश्चात् सत्पुरुषज्ञ समास के साथ उसके दो भेद—कर्मधारय और द्विगु समास मनोरमाकार ने निरूपित किये हैं। इन दोनों भेदों के विशिष्ट विधानों के अन्तर्गत समासान्त प्रत्ययों का समावेश आपने किया है। मनोरमाकार के अनुसार कर्मधारय समास में गुण—क्रिया—जाति वाचक शब्द के मध्य में जातिवाचक शब्द ही विशेष्य होते हैं। दीक्षित जी ने तत्पुरुष समास के अन्तर्गत विभिन्न संदर्भों पर विशेष दृष्टिपात किया है। बहुव्रीहि समास में पाणिनि सूत्रस्थ 'शेष' पद के अभीष्ट अर्थ की ओर संकेत करते हुए दीक्षित जी ने 'प्रौढमनोरमा' में तत्पुरुषादिक के अतिरिक्त इसकी पृथक्ता को परिलक्षित किया है।

उत्तरार्ध प्रकरण—

इस प्रकरण में दशागण प्रक्रियाएं तथा कृदन्त प्रत्ययों का विवेचन करते हुए लौकिक संस्कृत की शब्द रचना निष्पादित की गयी है। मूल धातुओं की संख्या प्रायः दो हजार पठित है।

1. (भूवादयो धातवः 1.3.1) पुनरपि सनाद्यन्त को एवं कण्ड्वादि
2. (सनाद्यन्त धातवः 3.1.32) का भी धातुओं में समाकलन करने पर उनकी संख्या अगणित होगी। ग्रन्थकार ने कौमुदीस्थ दुरुह पंक्तियों को हृदयग्राही बनाने हेतु उनका स्वयं विस्फोरण किया है। भ्वादि के आरम्भ में ही 'मनोरमा' कार ने लकार का अर्थ करते समय नैयायिकों के सिद्धान्त में अरुचि प्रदर्शित की है। वैयाकरणों के अनुसार दीक्षित जी ने लकार का अर्थ 'कर्ता' स्वीकार किया है। इसके विपरीत नैयायिक उसे 'कृति' परक मानते हैं। इसी प्रकार उक्त स्थल पर नैयायिक सम्मत तिङ् अर्थ व्यापार से असहमति प्रकट की है। भ्वादिगण में धातु सम्बन्धी विषयों का विचार होने के कारण कौमुदीस्थ तथा तदितर विषम स्थलों पर सवोपज्ञ व्याख्यान में प्रायः 275 स्थल चयन किये गये हैं। इन स्थलों में पूर्वार्ध से सम्बद्ध कुछ आवश्यक फक्किकाओं भी हुई हैं। अन्य नव गणों में गणसम्बन्धी विकरणों पर यथास्थान विचार करते हुए कुछ धातुओं के विभिन्न अर्थ तथा विपरीत—तिङ् प्रत्ययान्त धातु रूपों के प्रामादिक प्रयोगों पर अपनी आपत्ति दिखाई है।

प्रौढमनोरमा की व्याख्याएँ—

सम्पूर्ण प्रौढमनोरमा की सर्वोत्कृष्ट व्याख्या महामहोपाध्याय भट्टोजिदीक्षित के पौत्र एवं आचार्य नागेश भट्ट के गुरु महावैयाकरण हरिदीक्षित विरचित बृहच्छब्दरत्न तथा लघुशब्दरत्न है, इसका रचनाकाल प्रायः 1710 वैक्रमाब्द है।

लघुशब्द रत्न के विषय में किंवदन्तियों के आधार पर कुछ विद्वानों की मान्यता है कि नागेश भट्ट ने गुरुनिष्ठा के कारण अपने गुरु हरिदीक्षित के नाम से लघुशब्दरत्न की व्याख्या लिखी, किन्तु यह सर्वमान्य नहीं है क्योंकि हरिदीक्षित ने उत्तरकृदन्त के अन्त में “किन्तु क्त्वेति” प्रतीक के व्याख्यान में लिखा—

“उपपदसमासोऽपि नेति बौद्धयम्। इति शिवम्।
विस्तरस्तु बृहच्छब्दरत्ने भदन्तेपासिकृते
बृहच्छब्देन्दुशेखरादौ च द्रष्टव्यः।।”

इन पङ्क्तियों से सुस्पष्ट है कि लघुशब्दरत्न व्याख्या आचार्य हरिदीक्षित विरचित है। अपने शिष्य की प्रतिभा तथा पाण्डित्य का सम्मान करने के लिए “भदन्तेपासिकृते बृहच्छब्देन्दुशेखरादौ च” कहा।

क्योंकि भारतीय परम्परा सुयोग्य पुत्र एवं सुयोग्य शिष्य को उत्कृष्ट देखना चाहती है। गुरुवर हरिदीक्षित के सिद्धान्त को शिष्यवर नागेश भट्ट के द्वारा अपनाना स्वभाविक है।

इस विषय में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से प्रकाशित “अव्ययीभावान्त प्रौढमनोरमा” की व्याख्या बृहच्छब्दरत्न की भूमिका आचार्य डॉ० सीताराम शास्त्रिकृत दृष्टव्य है।

वैदिक की समाप्तितक ‘लघुशब्दरत्न’ उपलब्ध है तथा उत्तरकृदन्त पर्यन्त ‘बृहच्छब्दरत्न’ था। इसमें प्रमाण स्वरूप “विस्तरस्तु बृहच्छब्दरत्ने दृष्टव्यः” स्वीकार्य है। इसी क्रम में वैदिक तथा स्वर का ‘लघुशब्दरत्न’ तथा स्वर का ‘लघुशब्दरत्न’ अन्वेषणीय है।

“परिभाषेन्दुशेखर”

नागेशभट्ट के “परिभाषेन्दुशेखर” पर 30 से अधिक टीकायें उपलब्ध हैं, उनमें “भूति”, “विजया”, “हैमवती”, “भैरवी” आदि उल्लेखनीय हैं। “परिभाषेन्दुशेखर” में 133 परिभाषाएँ ली गई हैं। ये सभी विद्वन्मान्य हैं तथा पतञ्जलि ने महाभाष्य में तत्तत् स्थानों पर उनका उल्लेख किया है।

नागेशभट्ट ने उनके अर्थ, तात्पर्य तथा उनकी आवश्यकता इतनी सुन्दरता तथा प्रमाणों से स्पष्ट की है कि सभी विद्वानों ने “परिभाषेन्दुशेखर” का पूर्ण आदर किया है। “परितो भाष्यते सा परिभाषा”, “परितोव्यापृतां भाषा परिभाषां विदुर्बुधाः”। जो परिभाषाये पाणिनि के सूत्रों में नहीं हैं वे ही “परिभाषेन्दुशेखर” में ली गयी हैं। अतः ये परिभाषाएँ पाणिनि के सूत्रों तथा कात्यायन के वार्तिकों से अतिरिक्त हैं। परिभाषा के दो भेद हैं—

1. शास्त्रत्व सम्पादिका तथा
2. शास्त्रत्वावच्छेदिका।

परिभाषेन्दुशेखर में प्रकरणों को “तन्त्र” नाम दिया गया है। ये प्रकरण तीन हैं। प्रथम, शास्त्रत्व—संपादनोद्देशप्रकरण है जिसमें 1 से 36 तक परिभाषाएँ हैं। दूसरा बाधबीज प्रकरण है जिसमें 38 से 71 तक परिभाषाएँ हैं और तीसरा तन्त्रशेष प्रकरण है जिसमें 72 से 133 तक परिभाषाएँ हैं। परिभाषाएँ के भिन्न—भिन्न अनेक प्रकार हैं— वाचनिक, न्यायसिद्ध ज्ञापक सिद्ध आदि। कुछ परिभाषाएँ जो “परिभाषेन्दुशेखर” में नहीं ली गई हैं— किन्तु प्रचलित हैं— उनका विचार “परिभाषेन्दुशेखर” की कुछ परिभाषाएँ जो “परिभाषेन्दुशेखर” की कुछ परिभाषाओं के विवरण में किया गया है, जैसे “लक्ष्ये लक्षणं सकृदेव प्रवर्तते” इस प्रचलित परिभाषा का विचार “पर्जन्यवल्लक्षणप्रवृत्ति” इस बीसवीं परिभाषा के विवरण में किया गया है। जिन परिभाषाओं को “परिभाषेन्दुशेखर” में लिया गया है, उनके विषय में स्वयं नागेशभट्ट ने आरम्भ में ही कहा है— “प्राचीनवैयाकरणतन्त्रे वाचनिकानि, अत्र पाणिनीय—तन्त्रे ज्ञापकन्यायसिद्धानि भाष्यवार्तिकयोरुपनिबद्धानि यानि परिभाषारूपाणि तानि व्याख्यास्यन्ते”। “परिभाषेन्दुशेखर” की “हैमवती” टीका जो मेरे पिता श्रीकृष्ण शास्त्री थत्ते के गुरु काशी के पण्डित योगेश ओझा की कृति है अब मुद्रित हो पाई है किन्तु इसकी हस्तलिपि मेरे पास है। नागेश भट्ट के “परिभाषेन्दुशेखर” के पूर्व व्याडि ने “परिभाषापाठ” नामक संग्रह ग्रन्थ व उसके बाद सीरदेव ने “परिभाषावृत्ति” लिखी है। माधवनिर्मित “धातुवृत्ति” में “परिभाषावृत्ति” का उल्लेख है।

लघुशब्देन्दुशेखर के टीकाकार

पं० वैद्यनाथ पायगुण्डे—सिद्धान्त कौमुदी की रचना के अनन्तर भट्टोजिदीक्षित ने उसकी प्रौढ़ मनोरमा नामक व्याख्या स्वयं लिखी। फिर भी उस पर व्याख्या लिखने का क्रम थमा नहीं। हरिदीक्षित के शिष्य सुप्रसिद्ध वैयाकरण नागेश “लघुशब्देन्दुशेखर” की रचना की। इस अन्तराल में व्याकरण के प्रक्रिया ग्रन्थों के दृष्टिगत होने के फलस्वरूप नागेश को पूर्व ग्रन्थों का समन्वय करने का अच्छा अवसर मिला। इस क्रम में राजकीय संस्कृत महाविद्यालय (काशी) तथा नागेश के मध्यवर्ती 50 वर्षों का समय उल्लेखनीय है। इसी कालखण्ड में नागेश के पट्टशिष्य “वैद्यनाथ पायगुण्डे” के व्याख्या ग्रन्थों का निर्माण हुआ ऐसा अनुमान लगाना अनुचित नहीं है।

उनके जन्मकाल के सम्बन्ध में निश्चित तिथि यद्यपि ज्ञात नहीं है। फिर भी उनके पुत्र बालम्भट्ट के निधनकाल विक्रम सं० 1887, तदनुसार 1830 ई० से अनुमान लगाया जा सकता है।

अलम्भट्ट की मृत्यु 90 वर्ष की अवस्था में हुई थी। तदनुसार इनका जन्मकाल वि०सं० 1777 के आसपास होना चाहिए। वैद्यनाथ ने अपने गुरुवर्य नागेश के महनीय ग्रन्थों के ऊपर अपनी जिन टीकाओं का निर्माण किया, उनमें से कतिपय का रचनाकाल उस काल खण्ड के आरम्भिक दशक में माना जा सकता है। नागेशभट्ट के पट्टशिष्य वैद्यनाथ पायगुण्डे के सम्बन्धी तथा शिष्यों के द्वारा पाणिनीय व्याकरण महाराष्ट्र मण्डल में भी प्रविष्ट हो गया और वहाँ के प्रमुख वैयाकरण एक प्रकार से नागेश की शिष्य परम्परा के अन्तर्गत ही आते हैं। यह पायगुण्डे के वैदुष्य का प्रभाव है। पायगुण्डे के जमाता “देव” तथा शिष्य भैरव मिश्र दोनों ही व्याकरण के महनीय आचार्य थे। प्रसिद्ध है कि पूना के प्रख्यात वैयाकरण नीलकण्ठ शास्त्री जिस अहोबल शास्त्री के शिष्य थे उन्होंने पायगुण्डे के जमाता देव के पास ही विद्याध्ययन किया था। श्री नीलकण्ठ शास्त्री के शिष्यों में राघवेन्द्राचार्य गजेन्द्रगडकर जो नागेश की जोड़ी के विद्वान् माने जाते थे इन्होंने व्याकरण के अनेक ग्रन्थों पर व्याख्यायें लिखी जिनका यथा-स्थान वर्णन किया गया।

“दण्डिभट्टकृत अभिनव चन्द्रिका”

अभिनवचन्द्रिका के रचयिता श्री दण्डी भट्ट भी परिष्कारों की सरणि को बढ़ाने में अग्रसर रहे हैं। इन्हें सुप्रसिद्ध वैयाकरण बालसरस्वती (बालशास्त्री) रानडे से विद्याध्ययन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। जिसके फलस्वरूप इन्होंने गुरुमुख से अधीत परिष्कारों को संकलित कर उन्हें “अभिनव चन्द्रिका” का रूप दिया।

इस व्याख्या की उपलब्धि केवल हलन्त प्रकरणमात्र तक ही प्रकाशित हुयी है। आगे का अंश अप्राप्य है। कदाचिद् इतना ही इस व्याख्या की उपलब्धि केवल हलन्त प्रकरणमात्र तक ही प्रकाशित हुयी है। आगे का अंश अप्राप्य है। कदाचिद् इतना ही भाग यह विरचित कर पाये हों। इसके अग्रिम भाग के रूप में विद्वदवर पं० शिवनारायण शास्त्री द्वारा विरचित विजया तथा पंडितप्रवर, श्रीगुरुप्रसाद शास्त्री द्वारा विरचित ‘वरवर्णिनी’ को समझा जाय।

दण्डिभट्ट ने भी परम्परागत परिष्कारों को अपनी कल्पना द्वारा ललित एवं बोधग्राह्य बनाने की यथा-साध्य चेष्टा की है।

दण्डीभट्ट ने अपने वंश तथा गुरु के सम्बन्ध में सर्वप्रथम मंगलाचरण स्वरूप निम्नलिखित श्लोक प्रस्तुत किये हैं—

सत्यव्रताच्च विजयनगरधिपसत्तमात् ।

‘पूस्पाटि’ वंश सम्भूतादानन्दाल्लब्धवृत्तिना ।।

श्रीदण्डिभट्ट कुलजवीरराधव सूनुना ।

बालशास्त्रिपदाम्भोजध्यान संलब्धबुद्धिना ।।

सुब्रह्मदेव्याः पुत्रेणश्वश्रूपूजार्तेः सदा ।

सान्न्पूर्णाधर्मपत्नि विश्वनाथेन वै मुदा ।।

वाराणसी पुरीवासी श्री विश्वेश्वरतृष्टये ।

आबाहुपुरुषाकारं शङ्खक्रासिधारिणम् ।।

सहस्रशिरसं नत्वा पतञ्जलिमहामनिम् ।

क्रियते कौमुदी व्याख्या—लघुशब्देन्दु—चन्द्रिका ।।

उपर्युक्त श्लोकों से विदित होता है कि इनके आश्रयदाता विजयनगर के राजा रहे। इनके पिता श्री वीरराधव भट्ट तथा माता श्रीमती सुब्बाम्मा रहीं। इनकी धर्मपत्नी का नाम श्रीमती अन्नपूर्णा था। इन्होंने अपनी व्याख्या को केवल परिष्कार परक ही नहीं बनाया, अपितु शेखर की प्रसिद्ध तथा छात्रोपयोगी प्रतीकों का अवलम्बन कर उपयोगी विषयों को भी स्पष्ट किया। अतः दण्डीभट्ट का 'क्रोटपत्र' अधिक विस्तृत तथा सामान्य जनोपयोगी भी है। उपपद विभक्तियों के प्रसंग में 'नमः' पद के अभिवाञ्छित अर्थ को दण्डीभट्ट ने निम्नलिखित शब्दों में स्पष्ट किया है। जिसमें मुनित्रयं नमस्कृत्य श्लोक के दोनों प्रकार की अभिव्यक्तियों का समीकरण हुआ है— "नमः स्वस्तीत्यव्ययस्य नमः पदप्रयोज्यविषयतानिरूपित— विषयाप्रयोजकत्वात्पर्यविषयी. भूताच्चतुर्थीत्यर्थेन कृधात्वर्थफलेऽन्वयविवक्षायाम् उभयोः प्राध्याडसङ्गत्ययावात् ।"

"राघवेन्द्राचार्यकृत विषमा (विषमपदविवृतिः)"

छः टीकायुक्त "शेखर" के प्रकाशित संस्करण में राघवेन्द्राचार्य कृत "विषमा" व्याख्या अपने नाम के अनुरूप सिद्ध हुई है। प्रस्तुत व्याख्या के रचयिता को काशी के सुप्रसिद्ध वैयाकरण पं० राजाराम शास्त्री तथा उनके शिष्य पं० बलशास्त्री रानडे का आशीर्वाद प्राप्त रहा। नागेश के बाद पं० गंगाराम शास्त्री, भी शिष्य परम्परा में चतुर्थ एवं पंचम थे दोनों विद्वान् पारम्परिक परिष्कारों की श्रृंखला उत्तरोत्तर बढ़ाने में अथक प्रयास करते रहे। इन दोनों विद्वानों के सान्निध्य का ही पूर्ण लाभ राघवेन्द्राचार्य जी को मिला। इनका रचनाकाल भी पं० सदाशिव के अवसान होने के आस-पास आंका गया है। इनकी व्याख्या शेखर के आरम्भ से लेकर षष्ठी विभक्तिपर्यन्त प्राप्त होती है। अवशिष्ट सप्तमी विभक्ति प्रकरण का व्याख्यान लिखा हो अथवा नष्ट हो। इस सम्बन्ध में निश्चयात्मक प्रमाण नहीं मिलता है। कारण यह है कि शेखर का पठन—पाठ तथा प्रचार कारकान्त अथवा अव्ययभावान्त तक ही सीमित चला था। केवल इतने अंश तक ही अध्यापन करने का यह कारण था कि अधिकतर सैद्धान्तिक तथा परिष्कारांश प्रक्रिया का समाकलन इतने अंश तक ही अध्यापन करने का यह कारण था कि अधिकतर सैद्धान्तिक तथा परिष्कारांश प्रक्रिया का समाकलन इतने अंश में प्रायः समाहित हो जाता था।

राघवेन्द्राचार्य के व्याख्यान की सबसे प्रमुख विशेषता ग्रन्थ के प्रक्रियांश का विवरण करना है जो "क्रोटपत्र" के रचयिताओं में कम मिलती है। प्रक्रियांश का विवरण ही सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि का आधार है। जिसे केवल क्रोटपत्र के प्रचारको ने अध्ययताओं को प्रक्रियांश के प्रति उदासीनता उत्पन्न कर दी थी।

'दीपक' व्याख्या

पं० नित्यानन्द पंत पर्वतीय (1924 वि०—1988 वि०)—

नागेश भट्ट विरचित शेखर द्वय के पठन—पाठन में काशी की वैयाकरण परम्परा सर्वाग्रणी रही है। इसके मूल में सन् 1791 ई० में संस्थापित राजकीय संस्कृत पाठशाला के उत्तरोत्तर विकास के साथ उन्नीसवीं शती के अन्त में परीक्षा प्रणाली को अभिलक्षित कर दोनों ग्रन्थों ने महती भूमिका का निर्वहन किया है। इसके फलस्वरूप नव्य—व्याकरण में परिष्कार सरणि के शुभारम्भ पण्डित गंगाराम त्रिपाठी शास्त्री की शिष्य परम्परा का वैभवपूर्ण अवदान चिरस्मरणीय रहेगा। उन्हीं के दौहित्र पुत्र म०म० पं० नित्यानन्द पंत तक वह परम्परा अपने मौलिक स्वरूप में स्थित रही यह कहना अव्यक्ति न होगी।

आपका जन्म काशी में ही पौष कृष्ण त्रयोदशी विक्रम संवत् 1924 में हुआ। आपके प्रपितामह पण्डित नीलाम्बर पंत अल्मोडा नगर के समीप तिलाडी ग्राम से काशी आए। वेदान्त दर्शन तथा धर्मशास्त्र के मनीषी विद्वान् होने के अतिरिक्त सिद्ध योगी पुरुष थे। पंत जी में अपनी पितृ—मातृ परम्परा से प्राप्त वैदुष्य तथा पितृ परम्परा से प्राप्त त्याग और तपस्या का अभूतपूर्व समन्वय था। पांचवे वर्ष में अपनयन संस्कार के उपरान्त आपने अपने पिता पं० नामदेव

जी से शुक्ल यजुर्वेदीय माध्वीन्दन संहिता का अध्ययन किया। आपने तेरह वर्ष की अवस्था में संपूर्ण मध्यमा उत्तीर्ण की।

उन्नीस वर्ष की अवस्था में व्याकरणाचार्य परीक्षा में 1887 ई० में सम्पूर्ण मध्यमा उत्तीर्ण की उन्नीस वर्ष की अवस्था में व्याकरणाचार्य परीक्षा में 1887 ई० में सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया। यह संस्कृत कॉलेज की परीक्षा का द्वितीय चक्र था, जिसमें आपके अतिरिक्त पं० रामभवन उपाध्याय, तथा पं० श्री नीरू सुब्रह्मण्य शास्त्री थे। प्रथम चक्र में म०म०पं० श्री राम शास्त्री तैलंडगा, म०म०पं० रघुनन्दन त्रिपाठी एवं पं० अम्बिका दत्त व्यास इस विद्वत्त्रयी ने आचार्य परीक्षा समुतीर्ण की। पंत जी गुरु चरणों का सतत आश्रय लेते हुए प्रत्येक शास्त्र को आत्मसात करते थे ताकि परीक्षा में भी सर्वोच्च स्थान प्राप्त करते थे आप विद्वन्ता के फलस्वरूप 1898 ई० में सेण्ट्रल हिन्दू स्कूल में उसके स्थापना दिवस में ही अध्यापक नियुक्त हुये और स्थापना दिवस से ही आपने डॉ० भगवान् दास, श्रीपरांजपे आदि के साथ वहाँ सात वर्षों तक अध्यापन किया। 1905 ई० में केवल ढाई वर्ष के पुत्र वियोग से सन्तप्त आने वह सेवावृत्ति छोड़ी दी और आजीवन सेवा न करने की प्रतीज्ञा की। आपके जीवन ने तब एक नया मोड़ ले लिया और आजीवन सेवा न करने की प्रतीज्ञा की। आपके जीवन ने तब एक नया मोड़ ले लिया और आपने इसके फलस्वरूप केवल सुरभारती की सेवा के रूप में आप आजीवन असंख्य छात्रों की घरपर ही विद्यादान करते रहे।

आपने 'लघुशब्देन्दुशेखर' को दीपक से समुग्ध समुज्ज्वलित किया है। उन दिनों परिष्कार पद्धति में नव्यन्यास शैली का प्रभाव होने से विभिन्न विद्वानों ने अपने क्रोडपत्र तैयार कर रखे थे। जिन्हें गुरुपरम्परा द्वारा शिष्य मण्डली को हृदयमम कराया जाता था। उस समय तक ये क्रोडपत्र अधिकतर उन गुरुकुलों तक ही सीमित रहे, फिर भी शास्त्रार्थ द्वारा पण्डित सभाओं में प्रचार में आते रहे। इस प्रकार विभिन्न गुरुकुलों की शाखा प्रशाखाओं में निर्धारित विषयों तक ही परिष्कार सीमित रह गए।

पंत जी इन दोनों विधाओं में परिचित रहे और उन्होंने अपने समय तक उपलब्ध प्रसिद्ध क्रोडपत्रों का अनुशीलन कर एवं अपनी गुरुपरम्परा प्राप्त परिष्कार सरणि वितान करते हुए लघुशब्देन्दुशेखर को अभिनव दीप से समुद्भासित किया।

संस्कृत-वाङ्मय का वृहद इतिहास, पञ्चदश खण्ड व्याकरण, पद्मभूषण आचार्य बलदेव उपाध्याय, प्र० गोपालदत्त पाण्डेय। पृ० 290/2001 ई०

परिभाषेन्दु का विवरण

'परिभाषेन्दु' के व्याख्याताओं में सर्वप्रसिद्ध पं० श्री भैरव मित्र रहें इनका विस्तृत परिचय 'शब्देन्दु' के व्याख्याताओं में पूर्वप्रदत्त है। 'परिभाषेन्दु' पर इनकी टीका (भैरवी) सुविदित है, जो मूलार्थ को हृदयंगम कराने में पूर्ण समर्थ है। नागेश के शिष्य होने के नाते इनके 'विवरण' में ग्रन्थकार की भावनाएं सन्निहित हैं। यद्यपि परिष्कारों की जटिलता का इन्होंने परित्याग किया है। फिर भी परिभाषाओं की सार्थकता पर आपने नये विचार को दर्शाया है, भविष्य में टीकाकारों ने उसे अपना उपाजीव्य माना है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण पं० यागेश्वर ओझा का 'हैमवती' टीका है।

इसी क्रम में पं० वैद्यनाथ पाथगुण्डे ने 'गदा' नाम की व्याख्या लिखकर परिभाषाओं की सार्थकता के साथ परिष्कारों की सरणि से नयी पीढ़ी को जागरूक किया है। इसके फलस्वरूप पं० तात्या शास्त्री तथा पं० जयदेव मिश्र को परिष्कारों की कोटियों में नई प्रकल्पनाएं करने का अवसर दिया।

नव्य व्याकरण के इतिहास में 'शेखरद्वय' पर ऐसा अधिकार किया है कि इन दोनों ग्रन्थों पर बिना लिखे वैदुष्य प्रकाशित नहीं होता था। अतः दण्डिभट्ट विश्वनाथ ने भी 'शब्देन्दु' के समान 'परिभाषेन्दु' पर भी व्याख्या लिखी अभ्यंकर द्वारा लिखित 'महाभाष्य' के प्रस्तावना खण्ड में इसका उल्लेख है। इनकी व्याख्या भी परिष्कारों पर ही आधारित होनी चाहिए। ऐसे अन्य टीकाकारों में अभ्यंकर जी ने उदयशंकर पाठक द्वारा लिखित 'पाठकी' हरिनाथ कृत

‘अकाण्डताण्डव’ देव कृत ‘दोषोद्धरण’ भीमभट्ट की ‘भैमी शांकरी लक्ष्मी नृसिंह की त्रिशिखा तथा अज्ञातकर्तृक ‘अम्बाकर्त्री टीका सम्पत्ति का उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त इन्होंने इनके सम्बन्ध में विशेष विवरण नहीं दिया है।’

इसी विवरण में अभ्यंकर जी ने विद्वत्त्रयी को समादर पूर्वक ‘परिभाषेन्दु’ के व्याख्याकारों में सम्मिलित किया है—

1. अष्टपुत्रे,
2. बालसरस्वती, गोविन्दाचार्य (बालशास्त्री रानडे) और
3. म०म०पं० शिवकुमार शास्त्री।

इनकी कृतियां हस्तलेखों के रूप में रह गयी है।

‘प्रक्रिया’ विषयक ग्रन्थों के समान आगे चलकर ‘परिभाषेन्दु’ के व्याख्याकारों ने परस्पर खण्डन—मण्डनात्मक स्वरूप देकर पारस्परिक मतभेद प्रदर्शित किये। इनमें अभ्यंकर जी के अनुसार पं० गोपालाचार्य और पं० विष्णुशास्त्री भट्ट प्रसिद्ध रहे। गोपालाचार्य कहलाड़कर के अनुसार पं० विष्णुशास्त्री भट्ट ने अपनी ‘विष्णुभट्टी’ लिखी, जिसका प्रत्युत्तर गोपालाचार्य जी ने दूषकरदोष भेदिनी लिखकर उस नाम को सार्थक किया। पुनश्च उसका प्रखर प्रत्युत्तर विष्णु शास्त्री भट्ट ने ‘चित्तचन्द्रिका’ लिखकर दिया।

आधुनिक युग में डॉ० कीलहार्न की परम्परा को बढ़ाने में परिभाषेन्दुशेखर का अंग्रेजी भाषा में भी बड़ा सफल अनुवाद किया गया है। जिसके लेखक है त्रिवेदी इन व्याख्याताओं के अतिरिक्त म०म०पं० काशीनाथ अभ्यंकर जी ने अपने ‘द डिक्शनरी ऑफ संस्कृत ग्रामर’ (संस्कृत व्याकरण कोष) में अनेक विद्वानों द्वारा लिखित टीकाओं टिप्पणी तथा व्याख्याताओं का उल्लेख किया है। इनका नामोल्लेख करना भी आवश्यक है। इनमें से अधिकतर विद्वान काशी के बाहर के हैं। ‘संस्कृत व्याकरणकोष’ के अनुसार वह विवरण इस प्रकार है— सर्वश्री हरिनाथ द्विवेदी ‘मनीष्यानन्द’ (काशी) हरिशास्त्री भागवत, गोविन्द शास्त्री भारद्वाज, नारायण शास्त्री गलगली, वेणीमाधव शुक्ल (बृहच्छास्त्रार्थकला), ब्राह्मनन्द सरस्वती, मनीषी शर्मा, भीमाचार्य गलगली, माधवाचार्य वाईकर आदि हैं। इसके अतिरिक्त ‘परिभाषेन्दु’ की हरिशास्त्रीकृत ‘वाक्यार्थ चन्द्रिका’, शेषदर्शन सूरिकृता ‘सर्वमंगला’ आदि संस्कृत व्याख्याएँ भी प्रकाशित हुई हैं।